जैन धर्म और महाकाल मन्दिर उज्जैयन

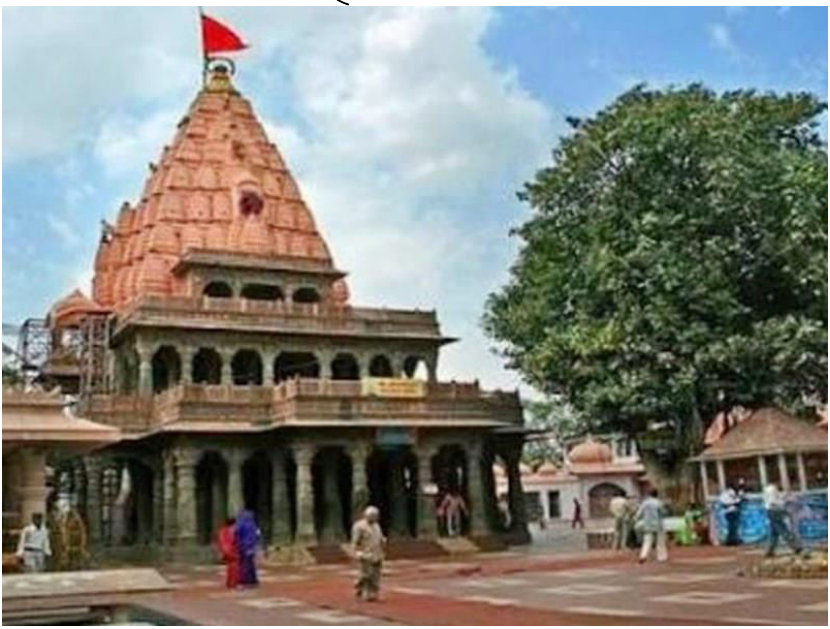

उज्जैयन को पहिले अवन्ति नाम से भी पुकारा जाता था, उज्जैयन नाम दिया महाराज उद्दैयन ने जब महाराज कौणिक के बाद पदभार संभाला। महाराज कौणिक महाराज श्रेणिक और महारानी चेलना के गर्भ में जब आया, तब से ही महारानी चेलना असन्तुष्ट थी क्योंकि कौणिक कालजयी था। महाराज श्रेणिक को कारावास में डालकर राज्यप्राप्त किया था और नाना चेटक के साथ युद्ध किया जिसमें दो करोड़ जीवों ने अपने प्राण गंवाए और उसकी राजधानी राजगृह थी। जब उद्दैयन ने राज्यभार संभाला तो राजधानी उज्जैयन बनाई जिसका अभिप्राय था उत्तम जैन। यह जैन नगरी भी कहलाती थी, सदा जैन सन्तों का आवागमन लगा रहता था।

एक समय की बात है कि वहाँ का महाराज विक्रमादित्य अश्वारूढ़ होकर क्रीड़ा के लिए जा रहा था कि रास्ते में जैन मुनि श्री सिद्धसेन को देखा और मन ही मन में भाव उत्पन्न हुए और मन से वन्दना की, महामुनि जी ने धर्मलाभ कहकर आशीर्वचन दिया। महाराज विक्रमादित्य ने कहा- गुरुदेव मैंने वन्दना तो की नहीं आपने आशीर्वचन क्यों दिया। मुनि श्री सिद्धसेन ने कहा, आपने काया से वन्दना नहीं की परन्तु मन में वन्दना के भाव आए और वन्दना की है। महाराज विक्रमादित्य अश्चर्य चकित रह गया, घोड़े से नीचे उतरा घोड़ा बांधकर मुनि श्री जी के चरणों में बैठ गया और धर्मलाभ प्राप्त किया। राजदरबार में पधारने की विनती भी की। मुनि श्री जी धर्मलाभ देकर आगे विहार कर दिया।

कुछ समय के पश्चात श्री सिद्धसेन का पधारना हुआ और वह राजदरबार पर पहुँच गये और एक संस्कृत का श्लोक लिखकर दरबारी को दिया, जो इस प्रकार है-

एक भिक्षु आपके द्वार पर आया है चार श्लोक लेकर, क्या वे बिना मुलाकात के लौट जाए ?

महाराज विक्रमादित्य भी संस्कृत का विद्वान था उसने दरबारी के हाथ लिखकर भेज दिया कि इस विद्वान को इस श्लोक के दस लाख मुद्रा और चोदह नगर का शासन देकर विदा करो। अगर फिर चाहे तो हमें मिलने के लिए आए।

श्री सिद्धसेन ने राजा का लिखा श्लोक पढ़ा और जान गये कि महाराज विद्वानों का सम्मान तो करते हैं, मेरे चारों श्लोको से सन्तुष्ट हो जाएंगें । वे चार श्लोक लेकर राज्यसभा में पधारे। महाराजा विक्रमादित्य ने खड़े होकर सम्मान किया और योग्य आसन दिया।

श्री सिद्धसेन ने लक्षणों से भरे श्लोक मे कहा- महाराज आपने यह धनुर्विद्या कहाँ से प्राप्त की प्रयंचा डोरी तो आपके पास ही रहता है और धनुष दूर चला जाता हा परन्तु आपकी विद्या में विलक्षण्ता है कि तीर आपके पास आता है और गुण दूर तक चले जाते हैं अर्थात आपकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैलती है।

गागर में सागर भरने वाले इस श्लोक से प्रसन्न होकर विक्रमादित्य दक्षिण की ओर मुँह करके बैठ गये और इस प्रकार प्रकट किया कि पूर्व दिशा का राज्य कविवर सुरीश्वर को अर्पित करता हूँ।

इस प्रकार कविवर श्री सिद्धसेन ने दूसरा श्लोक का उच्चारण किया, जो इस प्रकार है-

राजन् ! बड़े बड़े कवि लोग आपके बारे में कहते हैं, कि आप सभी वस्तुओं को मुक्त हाथ से दान करते हैं, परन्तु उनका यह कथन मिथ्या है। आप अपने शत्रु को कभी पीठ नहीं देते, आप सब चीजों के दाता कहे जाते है, यह कैसे सम्भव है ?

निन्दा के बहाने प्रशंसा करने वाले के इस श्लोक को सुनकर राजा विक्रमादित्य बहुत खुश हुए और पश्चिम की ओर मुँह करके बैठ गये और संकेत दिया कि इस कविवर को दक्षिण का राज्य देता हूँ।

इस प्रकार कविवर श्री सिद्धसेन ने तीसरा श्लोक का उच्चारण किया, जो इस प्रकार है-

हे राजन् ! समुद्र में स्नान करने से ठंड़ी के कारण आप की कीर्ति धूप की इच्छा से सूर्यमण्डल में गई है। जिसकी आभा दसों दिशाओं में व्याप्त होती हैं, उसी प्रकार आपका यश चारों ओर फैल हुआ है।

महाराजा विक्रमादित्य उत्तर दिशा को मुंह कर के बैठ गयें हैं अर्थात पश्चिम का राज्य देने का संकेत किया की गर्जना सुनकर शत्रु का हृदय रूपी घट फूट जाने पर उसका पानी उनकी पत्नियों की आँखों में आँसू रूप बहता है, अर्थात उनके मर जाने पर आँसू बहाती है।

इस प्रकार कविवर श्री सिद्धसेन ने पांचवा श्लोक का उच्चारण किया, जो इस प्रकार है-सरस्वती और लक्ष्मी चंचला आपसे क्रुद्ध होकर देश-देशान्तरों मे चली गई। अर्थात आपका यश चारों ओर फैला हुआ है।

महाराज श्रद्धाविभूत होकर सिंहासन से नीचे उतरा और हाथ जोड़कर कविवर महापण्डित से कहने लगे-

" हे प्रभो ! हाथी, घोड़े, रथ, रत्न आदि से युक्त मेरे इस राज्य को स्वीकार कीजिए।"

" राजन् ! आपने माता-पिता के उत्तराधिकारी होते हुए, मैं समस्त राजवैभव को तो मैं पहले ही त्यागकर चुका हूँ, हम जैसे तपस्वियों के लिए तो शत्रु-मित्र, मणि और मिट्टी, स्वर्ग और संसार सब एक समान है। हमे तो भिक्षान्न ही हमारे लिए सर्वस्व है । तुम्हारा राज्य धन मेरे किसी काम का नहीं।"

महाराज विक्रमादित्य गदगद होकर उनके चरणों में वन्दन करने लगा। सिद्धसेन विहार कर आगे बड़े।

श्री सिद्धसेन के मन में भाव पैदा हुए कि महावीर वाणी जो प्राकृत भाषा में है उसे संस्कृत में लिख दिया जाए तो विद्वानों के लिए उचित रहेगी। महान्त्र नवकार को संस्कृत मे लिखकर अपने गुरुदेव के पास गये, गुरुदेव आश्चर्य चकित होकर कहने लगे, क्या गणधरों ने जो प्राकृत में लिखे क्या वह संस्कृत

में नहीं लिख सकते थे, गणधरों ने जो भाषा प्रयोग की है वे मूर्ख, बालक व अन्जान समझ सकते हैं, इस विचारधारा से आपको भवभ्रमण करना पड़ेगा। श्री सिद्धसेन ने गुरुवर से प्रार्थना की मैं प्रायश्चित करना चाहता हूँ, आप मुझे दंड दो, गुरुदेव ने कहा, तुम बारह वर्ष अज्ञात में रहकर तप करो, फिर किसी महाराजा को बोध दो, श्री सिद्धसेन तप करने के लिए अज्ञात में चले गये और घोर तपस्या की, बारह वर्ष के पश्चात तप और अज्ञातवास पूर्ण कर उज्जैयन महाकाल मन्दिर पधारे और शिवलिंग की तरफ पाँव पसार कर लेट गये, मन्दिर के पुजारियों के विरोध पर भी नहीं उठे, अन्ततः महाराजा विक्रमादित्य को अवगत करवाया गया, महाराज विक्रमादित्य ने आदेश दिया, अवज्ञा करने वाले को कोड़े मारकर बाहर निकाल दो। समस्त पुजारी कोड़े लगाने लगे, परन्तु श्री सिद्धसेन को कोड़े नहीं लग रहे, महाराज विक्रमादित्य की महारानियां चिल्लाने लगी, कोई अदृश्य शक्ति कोड़े मार रही हैं, दासियां महाराज के पास पहुँचकर सारी स्थिति बताने लगी, महाराज विक्रमादित्य समझ गये, कि मन्दिर में कोई ज्ञानी, तपस्वी है और तुरन्त महाकाल मन्दिर पहुँचे और जा कर देखा कि मुनि जी तो बिल्कुल सकुशल हैं कोई कोड़ा लगा ही नहीं और श्री सिद्धसेन से कहने लगे, महात्मन् आप शिवलिंग की तरफ पाँव पसार कर लेट रहे हो, आपको तो इनकी पूजा अर्चना करनी चाहिए। श्री सिद्धसेन, महाराज ! यह मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर सकेंगे।

विक्रमादित्य महाराज नहीं, ऐसी कोई बात नहीं, श्री सिद्धसेन जी महाराज ने सिद्ध स्तुति का पाठ कल्याण मन्दिर स्तोत्र की रचना आरम्भ की, राजन् चाहे वीतरागी परमात्मा

कोई भी हो, वह शिव हो या पार्श्वनाथ हो, मेरे लिए समान रुप है, वन्दनीय हैं अभी दो ही गाथाएं का ऊँचे स्वर से स्मरण किया कि शिवलिंग से धुँआ उठना आरम्भ हो गया, ज्यों ज्यों पढ़ते गये शिवलिंग फटता गया दर्शक दंग रह गये और भगवान श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित हो गई। यह सिद्ध करती है कि वास्तव में शिव (कल्याण कारणी) भगवान पार्श्वनाथ ही हैं महाराज विक्रमादित्य मुनि श्री सिद्धसेन के चरण स्पर्श कर इसका कारण जानने की याचना करने लगे। यह मेरा पुण्य उदय है कि आप मेरा अज्ञान मिटाने यहाँ पधारें हैं। मैं आपका परिचय जानने का उत्सुक हूँ।

राजन् ! तुम्हें याद होगा कि एक बार मैंने एक श्लोक लिखकर द्वारपाल के हाथ तुम्हारे पास भेजा था। उस श्लोक के उत्तर में आपने एक श्लोक भेजा था, उसके बाद मैंने तुम्हारी राज्यसभा में आकर पाँच श्लोक और भी सुनाए थे, उसकी काव्यात्माकता से प्रभावित होकर तुमने अपना सम्पूर्ण राज्य देना चाहा था। मैं वही सिद्धसेन सूरि गुरुवर वृद्धवादी का शिष्य हूँ। अपने एक अपराध का प्रायश्चित करते हुए बारह वर्ष तक अवधूत वेश में इधर-उधर घूमता रहा हूँ अब तुम्हें तिवृद्ध करने आया हूँ।

महाज्ञानी और महापण्डित सिद्धसेन का परिचय जानकर महाराज विक्रमदित्य बहुत प्रसन्न हुए। महाकाल मन्दिर के प्रांगण में सुरीश्वर जी महाराज का धर्म समारोह हुआ और राजा-प्रजा, पुजारी सभी श्रद्धा भक्ति से गुरु वाणी का श्रवण करने लगे।

श्री सिद्धसेन, महाराज ! सुनो, उज्जैयन नगरी की कहानी इस महाकाल मन्दिर की स्थापना से है। यह महाकाल

मन्दिर पहले पार्शवनाथ का मन्दिर था। बाद में ब्राह्मणों ने इसे महाकाल शिव का रूप बना दिया।

मैं तुम्हें सुकमाल की रोमांचकारी कथा सुनाता हूँ. ध्यान देकर सुनो।

महाराज गन्धर्वसेन के शासनकाल में कुछ वर्ष पहले उज्जयनि मे एक गाथापति की पत्नी भद्रा नाम की समृद्धशाली और श्रमणोपासक सेठानी रहती थी। भद्रा ने पुत्र रत्न को जन्म दिया जिसका नाम था अवन्ती सुकमाल, वे देव विमान नलिनीगुल्म से च्वर कर उसके गर्भ में आया था, वे अति सुन्दर और सुकोमल था, जब बड़ा हुआ तो बाईस कुमारियों के साथ उसका विवाह किया, वे सुखभोग से अपना जीवन व्यतीत करने लगा। हर तरफ खुशहाली थी, भद्रा ने देखा दो मुनिराज आ रहे हैं, उसने उन्हों को वन्दना नमस्कार कर आहार की विनती की, मुनिराज, कल्याणी ! हम आहार के लिए नहीं आए हैं, हमें आचार्य श्री जी के किसी बताए हुए ओर काम के लिए आए है।

भद्रा ने कहा मुझे बताओ क्या काम है ? सेवा करके मेरा जीवन धन्य हो जाए।

मुनिराज आचार्य श्री बाहर उद्यान में ठहरे हुए हैं, साधु समुदाय को नगर में कोई उचित भवन की तलाश में हम आए हैं।

भद्रा बहुत प्रसन्न हुई और साधुओं से बोली मेरा अतिथि गृह इस समय खाली पड़ा है, आप आचार्य श्री जी को लाएं मैं इसकी अभी सफाई करवा देती हूँ, मेरा अहो भाग्य, मुनि मंडल का लाभ मुझे मिलेगा। यह घटना भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात दसवें आचार्य श्री सुहस्ती के समय की है। आचार्य श्री अपनी शिष्य मंडली सहित पधार गये। अपने श्रमणाचार की

साधना में लग गये। एक दिन आचार्य श्री जी की कथा ऊँचे स्वर नलिनीगुल्म विमान की कर रहे थे, कि वह स्वर अवन्ती सुकमाल सातवें खण्ड में अपनी बत्तीस पत्नियों के साथ सोया हुआ था, अचानक वह उठकर बैठ ही गया। शैय्यापर बैठा श्रेष्ठीपुत्र कान लगाकर सुनने लगा। उसे ऐसा लगा कि इस नलिनीगुल्म विमान के सुखों को मैंने भोगा हुआ है, सब कुछ जाना-पहचाना लग रहा है। अवन्ती सुकमाल को यह पाठ इतना भाया कि नीचे आचार्य श्री सुहस्ति के पास दत्तचित्त होकर नलिनीगुल्म पाठ सुनने लगा और जाति स्मरण ज्ञान हो गया। उसे सब कुछ याद आ गया कि पूर्वभव में वह नलिनीगुल्म विमान में देव था। देवलोक से च्युत होकर वह भद्रासुत अवन्ती सुकमाल बना है। पुनः इच्छा हुई कि मैं नलिनीगुल्म विमान का देव बनूँ। आचार्य सुहस्ति से प्रार्थना करने लगा।

" भगवन् ! नलिनीगुल्म पाठ में वर्णित सभी सुखों को मैं भोग चुका हूँ. प्रभो ! मैं पुनः नलिनीगुल्म विमान में जाना चाहता हूँ। मेरा पथ-प्रदर्शन कीजिए। "

" वत्स ! नलिनीगुल्म विमान में पहुँचने के लिए संयम ग्रहण करना पड़ेगा और तुम संयम पालना नहीं कर पाओगे। इसलिए ऐसे स्वप्न को भूलना ही होगा।"

श्रेष्ठी पुत्र ने कहा- " भगवन ! मेरा यह स्वप्न नहीं है, अब यह जीवन का लक्ष्य बन चुका है। आप मुझे दीक्षा प्रदान कीजिए। मैं संयम पालन करूँगा।"

आचार्य श्री जी ने पुनः समझाया, संयम की अराधना हँसी-खेल नहीं, अंगारों पर चलने से भी अधिक कठिन है। शीत-अताप, भूख-प्यास के परीषहों को तुम नहीं सहन पाओगे।

अवन्ती सुकमाल ने दृढ़ता से कहा-

प्रभो, मेरा निश्चय अटल है, शरीर से कोमल हूं, शरीर मन अनुगामी है, शरीर की पालना मन से होता है, मैं गजसुकमाल की तरह दृढ़ हूँ, कृपया दीक्षा दीजिए।

आचार्य श्री, दीक्षा के कुछ नियम होते है, सर्वप्रथम अपनी 22 पत्नियों और माता से आज्ञा लेकर आओ।

अवन्ती सुकमाल घर गया और पत्नियों एवं माता से आज्ञा मांगी, सब ने इन्कार कर दिया। सुकमाल ने अपने केश लुँचन किये और साधु वेष अपनाकर आचार्य श्री जी से दीक्षा की याचना की। आचार्य श्री जी ने दीक्षा प्रदान कर आशीर्वाद दिया।

दीक्षा ग्रहण करते ही मुनि अवन्ती सुकमाल ने आचार्य श्री जी से कहा- मुझे अमरण अन्नशन त्याग साधना की आज्ञा प्रदान कीजिए। आचार्य श्री जी से आज्ञा प्राप्त कर कंटकशील उद्यान की ओर चल पड़ा। कोमल पांवो में चुबन से रक्त बहने लगा और आगे बढ़ता गया, एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हो गये। श्रृंगाल अपने शावकों के साथ जमीन पर पड़े रक्त को चूसते हुए वहाँ पहुँच गये जहाँ सुकमाल ध्यानस्थ थे, पावों से रक्त बह रहा था, कि श्रृंगाल उनके पाँवो को चाटने लगा और पिंडली मुँह में दबा ली, सुकमाल धरती पर गिर पड़ा, ध्यान में स्थिर श्रृंगाल का धन्यवाद, मेरे सहायक बन रहे हो, कि सारे शावक उस पर टूट पड़े और मांस खाने लगे, जिससे सुकमाल देह त्यागकर लक्ष्य पूर्ण कर नलिनीगुल्म देव विमान में पहुँच गये ।

अगले दिन जब उनकी पत्नियां दर्शन के लिए पहुँची तो क्षत-विक्षत शरीर देखकर चिल्लाने लगी, आचार्य श्री, वह तो अपना लक्ष्य पूर्ण कर गया आप क्यों रोती हो, तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए। सब पत्नियों ने दीक्षा लेने का संकल्प किया,21 पत्नियां और एक माता ने दीक्षा ग्रहण की, एक पत्नी गर्भवती थी, जिसने दीक्षा नहीं ली और समय आने पर पुत्र को जन्म दिया। जब वह पुत्र बड़ा हुआ तो पिता के महाकाल जानकर उसी स्थान पर महाकाल भवन बनवाया, जो भगवान पार्श्वनाथ का मन्दिर था, यह वही स्थान है जहाँ हम बैठे हैं।

समय के प्रभाव से ब्राह्मणों ने इसे भैंरो का मन्दिर महाकाल बना दिया। जो श्रृंगाल था वह सुकमाल के किसी पूर्व भव में पत्नी थी। आज इस महाकाल मन्दिर में प्रतिदिन दस बोतल शराब चढ़ाई जाती है।

जैन धर्म अल्प संख्यक क्यों ?

भारत भूमि पर सर्वप्रथम श्रमण धर्म ने जन्म लिया। श्रमण संस्कृति काल (समय) को दो भागों में बांटती है, अवसर्पणि और उत्सर्पणि इन में छः छः आरे होते हैं। अवसर्पणी- पूँछ से मुँह तक (1 से 6 तक) उतसर्पणी मुंह से पूंछ तक (6 से 1 तक) इसी भारत भूमि पर वैष्णव संस्कृति भी है जो ईश्वरवादी है और समय को चार भागों में बांटती है- तपो युग, द्वापर युग, त्रेता युग और कलयुग जबकि जैन संस्कृति आत्मार्थी, परमात्मा को तो मानती है परन्तु उसके इस्तीत्व को नहीं मानती । अवसर्पणि का प्रथम आरा-सुखमा- सुखमा, दूसरा- सुखमा, तीसरा- सुखमा-दुःखमा, चौथा दुखमा-सुखमा,

पांचवां दुःखमा और छटा दुःखमा-दुःखमा। अब पांचवा आरा दुःखमा का समय है। वैष्णव समय के प्रभाव से तपो युग में मन्त्र (जो मन में धारा) से पूर्ति हो जाती थी, द्वापर में यन्त्र से काम चलने लगा, त्रेता में तन्त्र चलने लगा और कलयुग में षड्यन्त्र हावी हो गया है।

श्रमण संस्कृति और वैष्णव संस्कृति दोनों ही भारत माँ के लाल है। आज से 2600 वर्ष पूर्व भारत भूमि पर आहिंसा के अवतार भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध हुए। उस समय के राजा-महाराजा शान्तप्रिय एवं धार्मिक प्रावृति के होते थे, जो अपने अन्तिम समय में सन्यास धारण कर लेते थे। जनता भी धर्म से ओत-प्रोत होती थी, जिससे जैन धर्म जन-जन का धर्म था। अधिकांश राज्यों में जैन धर्म के उपासक थे। श्रमण भगवान महावीर निर्वाण के लगभग 250 वर्ष के पश्चात आचार्य भद्रबाहू के समय भी 12 वर्ष का भीषण आकाल और महामारी भी आई (जैसे आजकल कोरोना) आचार्य भद्रबाहू स्वामी ने उपसग्गहारं स्तोत्र की रचना की और महामारी शांत हो गई। उस समय सम्राट चन्द्रगुप्त जिसका राज्य गुरु चाणक्य था को रात के तीसरे पहर 16 स्वप्न आए और वह अपनी जिज्ञासा पूर्ण करने के लिए आचार्य भद्रबाहू के पास गये । उस समय उज्जयिनी में चन्द्रगुप्ति नामक राज्य करता था। महाराज को रात्रि के पिछले प्रहर में आश्चर्यजनक 16 स्वपन देखे । उन स्वपनों का फल जानने की राजा के मन में तीव्र इच्छा हुई और नगर के बाहर आचार्य भद्रबाहू अपने 12000 मुनियों के साथ

राजकीय उपवन में पधारे । राजा चन्द्रगुप्ति अपने मन्त्रियों,सामन्तों,परिजनों और परितिष्ठित नगर निवासियो के साथ आचार्य भद्रबाहुस्वामी के समक्ष अपने सोलह स्वप्न सुनाते हुए फल जानने की इच्छा व्यक्त की ।

ज्ञानबल से आचार्य श्री स्वपनों का फल बताते कहा आने वाला समय घोर अनिष्ट का सूचक है । जो इस प्रकार है –

- **अस्तमान रविदर्शन**-पंचमकाल में द्वादशांगादि ज्ञान न्यून हो जाएगा।
- **कल्पवृक्ष की शाखा भंग**- भविष्य में राजा दीक्षा ग्रहण नहीं करेगें।
- **छलनीतुल्य सछिद्र चन्द्र**-जैन धर्म में अनेक मतों का प्रादुर्भाव होगा ।
- **बारह फणों वाला सांप**- निरन्तर बारह वर्ष का दुष्काल।
- **उल्टे लौटते देवविमान**-देवता विद्याधर, चारणमुनि भरतक्षेत्र में नहीं आवें गे ।
- **अशुचि स्थान में कमल**- उत्तम कुल की जगह हीन जाति के जैन धर्म अनुरागी होगें ।
- **भूतों का नृत्य**- अधो जाति के देवों के प्रति श्रद्धाय़
- **खद्योत का उद्योत**- जैनागमों का उपदेश करने वाले मिथ्यात्व से ग्रस्त होगें और जैन धर्म कहीं कहीं रहे गा ।
- **बीच मे सुखा पर छिछले जल से युक्त किनारो वाला सरोवर**- जिन पवित्र स्थानों पर तीर्थंकरों के कल्याणक हुए हैं वहां धर्म नष्ट होगा । दक्षिणादि कहीं कहीं रहेगा ।
- **कुत्ते को स्वर्ण थाली में खीर**- लक्ष्मी प्राय़ः नीच पुरुषों के पास कुलीन वंचित होगें ।
- **बन्दर को हाथी पर**- नीच कुल के अनार्य राज्य करेगें ।

- **समुन्द्र के तटों का उलंघन-** राजा लोग न्यायमार्ग का उलंघन,प्रजा से लक्ष्मी लूटने वाले होंगे ।
- **बछड़े द्वारा रथ**-युवास्था में ही संयम ग्रहण करेगे, वृद्धावस्था में शक्ति क्षीण होगी ।
- **राजकुमार को ऊँट पर**- सत्य मार्ग का त्याग कर हिंसा मार्ग अपनाना .
- **धूलि से आच्छादित रत्न राशी**- निग्रन्थ मुनि भी आपस में एक दूसरे की निन्दा करेगें ।
- **दो काले हाथियो के लड़ते**- समय पर बादल नहीं बरसेगें ।

महाराज चन्द्रगुप्ति आचार्य श्री भद्रबाहुस्वामी से फल जान कर पुत्र को राज-पाट संभाल कर आचार्य श्री जी के पास दीक्षित हो गये ।

उस समय भारत सोने की चिड़िया कहलाता था और महावीर निर्वाण के 200-250 वर्ष के बाद विदेशियों ने आक्रमण करने आरम्भ कर दिए और भारत को लूटने लगे, जिसमें सबसे पहिले सिकन्दर महान आया और भारतियों के शोर्य के आगे नतमस्तक होकर जैनमुनि कल्याण ऋषि से भेंट हुई और उनके प्रभाव से वापिस जाने का मन बना लिया और अपना गुरु मान कर जैनमुनि कल्याण ऋषि को साथ ले गये, वह बात अलग है कि सिकन्दर की रास्ते में ही मृत्यु हो गई। जैनमुनि कल्याण ऋषि वहाँ जाकर कलवायस नाम से प्रसिद्ध हुए।

चन्द्रगुप्त के बाद बिम्बसार (श्रेणिक), आशोक, कुणाल और सम्प्रति जो ईसा के छटी शताब्दी तक सब ने जैन धर्म का

विस्तार भारत में ही नहीं अपितु वर्तमान पाकिस्तान, अफगानिस्तान,युनान, ईरान, तिब्बत, कुछ भाग चीन का, ब्रह्मा और लंका तक का किया । सम्राट आशोक कुछ समय बाद बुद्ध धर्म का अनुयायी हो गया। आशोक के बेटे सम्प्रति ने जैन धर्म को विशाल धर्म बनाया और 1,25000 जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया । महाराजा चन्द्रगुप्त जैन धर्म में दीक्षित होने वाले अन्तिम राजा थे । इन के बाद कोई राजा जैन धर्म में दीक्षित नहीं हुए और इन सब ने ब्राह्मण संस्कृति को कोई अधिक सम्मान नहीं दिया। चन्द्रगुप्त अपने गुरु के साथ अन्तिम समय चन्द्रगिरि पर्वत पर गये और वहां समाधि ली। अब प्रश्न उठता है इतना विशाल धर्म आज अल्पसंख्यक क्यों ?

इस घर को आग लग गई, घर के चिराग से ।

सर्वप्रथम जैन धर्म सम्प्रदाय की आग में झुलसा, जो चन्द्रगुप्त के स्वप्न धूलि से आच्छादित रत्न राशी- निग्रन्थ मुनि भी आपस में एक दूसरे की निन्दा करेगें । तब ब्राह्मण समाज के विद्वानों (रामानुज और शंकराचार्य) जो ईसा की छटी शताब्दी का अन्त एवं सातवीं शताब्दी में कलयुग के षडयन्त्र से जैनों पर अत्यन्त प्रभावी विनाश लीला रची और एक ही दिन में 8000 जैन सन्तों को मौत के घाट उतार दिया, जिसका इतिहास मिनाक्षी मंन्दिर के कमल सरोवर में उपलब्ध है, जो आजकल वर्जित किया गया है और एक हजार मन्दिर ध्वस्त कर दिया और बड़े बड़े मन्दिरो के नाम बदल कर मीनाक्षी मन्दिर, कपलेश्वर, तिरुपतिबाला जी कर दिये गये और धर्म परिवर्तन

करवाया गया। फिर मुगलों ने जैन विरास्त को नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, यहाँ तक कि जो आज कुतबमीनार है वह भी कभी जैन मन्दिर होता था । एक बात तो स्पष्ट है इन मन्दिरों के नाम चाहे बदले गये पकन्तु मूर्तिया जैन तीर्थंकरों की है जिन की अर्चना होती है तिरुपतिबाला जी नेमनाथ भगवान की खड़ी दिगम्बर मूर्ति जिसको वस्त्र और गहनों से ढ़ांप दिया जाता है।

आज हम अल्पसंख्यक जरूर है परन्तु आज पूरा विश्व आहिंसा को समझता है, आहिंसा कभी कमजोर नहीं होती, आज आवश्यकता है जैन समाज के संगठन की, हमें संख्या नहीं बढ़ानी, हम सब मिलकर जैन सिद्धांतो को आगे बढ़ाना है। आज आवश्यकता है स्थानक-मन्दिरों से बाहर आकर अन्य जनता को जैन सिद्धातों आहिंसा, शाकाहार से अवगत करवाएं, धर्म परिवर्तन नहीं हृदय परिवर्तन का सन्देश दें ।

स्वजन्त्र जैन जलन्धर

9855285970

4.7.2020